Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

प्रवासी हिंदी साहित्यः अवधारणा विमर्श

मनोज कुमार
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, हिन्दू महाविद्यालय, सोनीपत

शोध–सारांश
विश्व के इतिहास में 19वीं शताब्दी के उतरार्द्ध में एक ऐसी घटना घटी जिसका दूरगामी प्रभाव विश्व के साथ–साथ भारत पर भी पड़ा। विश्व के निर्जन टापुओं तथा प्राकृतिक जीवन जीने वाले और उनका दोहन करने के उद्देश्य से अपने उपनिवेश बनाने का प्रयास किया। इन देशों और टापुओं में मॉरिशस, फीजी, सूरीनाम, त्रिनिडाड और गयाना जैसे अनेक देश–टापू थे। इन देशों में भारतीयों को गुलाम और मजदूर बनाकर ले जाया गया था। ये प्रवासी गये किसी भी विवशता में हो परन्तु वहाँ के परिवेश में वे भारतीयता से अभिन्न रूप से जोड़े रखा। डॉ० गोयनका ने अपने उक्त उदाहरण में इस बात को स्पष्ट किया। जिन–जिन देश टापूओं या टापुनुमा देशों में भारतीयों को गुलाम मजादूरों के रूप में भेजा था उन देशों में उन्हें भयानक शारीरिक, मानसिक और आर्थिक यातनाओं का शिकार भी होना पड़ा। इन परिस्थितियों में रहते हुए भी प्रवासी भारतीयों ने कैरेबियन देशों में अपनी संस्कृति का सहारा भी लिया और उसकी रक्षा भी की। प्रवास का अर्थ है अपने स्थान को छोड़कर कहीं अन्यत्र जाना। डॉ० कृष्ण कुमार के अनुसार – ''प्रवास शब्द 'वस्' धातु में प्रवास उपसर्ग लगने से बना है। 'वस्' धातु का प्रयोग रहने के लिए होता है। वामन शिवराम आप्टे के अनुसार प्रवास शब्द का अर्थ विदेश गमन, विदेश यात्रा, घर पर न रहना है।''
भारतीय प्रवासियों ने अपने–अपने प्रवासी देशों में अपने संघर्ष एवम् कर्मठता से अपना एक संसार बसाया। मनोहरपुरी ने इस संघर्ष को कुछ इन शब्दों में व्यक्त किया है, ''मॉरिशस, फीजी, गुयाना, त्रिनिडाड और टूबैगो में भारतीय मूल के लोगों ने जो संघर्ष किया और बाद में वहाँ पर अपनी प्रतिभाओं के झंडे गाड़े। प्रवासी भारतीयों की भाषा, संस्कृति, धर्म देश–प्रेम ही उन्हें साहित्य से जोड़ता रहा तथा कालांतर में साहित्य सृजन के लिए भी प्रेरित करता रहा। प्रवासी साहित्य सृजन का प्रारम्भ 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में तब होता है जब भारत का उन देशों से सम्बन्ध जुड़ता है। इस विषय में मॉरिशस का स्थान अग्रणी रहा है। मॉरिशस की हिंदी कविता का इतिहास होली कविता (हिन्दुस्तानी 2 मार्च, 1913) से प्रारम्भ होता है। मॉरिशस के साहित्यकारों में मुनिश्वर लाल चिंतामणि, अभिमन्यु अनत, बृजेन्द्र कुमार भगत 'मधुकर', इंद्रदेव भोला, डॉ० वीरसेन जागा सिंह। मॉरिशस से अनुराग (1969–77), दर्पण (1975), आभा (1927–76), हमारा देश (1971–74), निर्वाण (1975), जनवाणी, इन्द्रधनुष (1988 से अभी तक)। फीजी में भी प्रवासी हिंदी साहित्य का पर्याप्त लेखन हो रहा है। यही स्थिति सूरीनाम, त्रिनिडाड में भी मिलती है।

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

प्रवासी साहित्य

विश्व के इतिहास में 19वीं शताब्दी के उतरार्द्ध में एक ऐसी घटना घटी जिसका दूरगामी प्रभाव विश्व के साथ–साथ भारत पर भी पड़ा। अर्थात् उन्नीसवीं शताब्दी में विश्व के अनेक देशों और टापुओं पर यूरोप (ब्रिटेन और फ्रांस) का शासन था। एक ओर ये दोनों देश इन छोटे–छोटे और अविकसित देशों के प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करने में लगे थे। दूसरी ओर अपने शासित देशों के विद्रोहियों को सजा देने के लिए तथा भोले–भालों को उनके सुन्दर भविष्य का स्वप्न दिखाकर इन देशों में भेज रहे थे। इन देशों और टापुओं में मॉरीशस, फिजी, सूरीनाम, ट्रिनिडाड, गयाना जैसे अनेक देश–टापू थे। इन देशों में भारतीयों को गुलाम और मजदूर के रूप में ले जाया गया था। इनमें अधिकांश मजदूर पूर्वी उतर प्रदेश एवं बिहार के थे। इनकी मातृभाषा भोजपुरी और अवधी थी। इन प्रवासियों की दशा एवं दृष्टि पर प्रकाश डालते हुए डॉ० कमल किशोर गोयनका ने इस प्रकार प्रकाश डाला है –

''भारत में अंग्रेज, फ्रैंच, डच आदि शासक अपने–अपने उपनिवेशी देशों में हजारों भारतीय मजदूरों को छल–कपट से गिरमिटिया मजदूर बनाकर ले गए और इस प्रकार मॉरीशस, सूरीनाम, फिजी, गयाना, त्रिनीडाड आदि देशों में हजारों भारतीय पहुँचा दिए गए और इन भारतीयों ने तुलसीदास की 'रामचरितमानस', 'हनुमान चालीसा' जैसे धार्मिक–सांस्कृतिक ग्रंथों से अपने अस्तित्व और अस्मिता की रक्षा करते हुए इन देशों का अपने श्रम से कायाकल्प कर दिया। ये भारतीय मजदूरों 'इंडियन इंडेन्यन लेबर सिस्टम' अर्थात शर्तबन्दी प्रथा के अन्तर्गत गए थे, अधिकांश रूप से पूर्वी उतर प्रदेश, बिहार आदि प्रदेशों से गए थे जिनकी मातृभाषा भोजपुरी थी और अवधी में रची गयी 'रामचरितमानस' खेत मालिकों की क्रूरता, अत्याचार और शोषण के बीच उनकी जीवन शक्ति का अजस्त्र स्त्रोत थी।

ये प्रवासी गए किसी भी विवशता में हो परन्तु वहाँ के परिवेश ने इन्हें भारतीयता से अभिन्न रूप से जोड़े रखा। डॉ० गोयनका ने अपने उक्त उदाहरण में इस बात को स्पष्ट किया। जिन–जिन देश–टापुओं या टापुनुमा देशों में भारतीयों को गुलाम मजदूरों के रूप में भेजा गया था। उन देशों में उन्हें भयानक शारीरिक, मानसिक, आर्थिक यातनाओं का शिकार भी होना पड़ा। इस यातना भरे जीवन में उन्हें अपनी संस्कृति, संस्कारों ने महतवपूर्ण सम्बल प्रदान किया। अतः वे जिस सांस्कृतिक पूँजी को अपने कण्ठ, मस्तिष्क और मन में लेकर गए, उसी पूँजी को उन्होंने वहाँ अपने श्रम एवं यातना से बचाव एवं उपाचार का साधन बनाया। इस विषय में भारतीय और मॉरिशस आदि देशों के विद्वानों की लगभग समान राय है। मॉरीशस के आप्रवासी साहित्यकार वहाँ की यातना भरी जिन्दगी के विषय में बहुत कम प्रकाशित एवं चर्चित होने की बात को रेखांकित करते हुए उसे गूँगा इतिहास सा कहकर कहते हैं – ''मॉरीशस आदि अनेक देशों का इतिहास गूँगा इतिहास है। उसकी चर्चा न के बराबर ही हुई है। 19वीं शताब्दी में वहाँ के भारतीयों ने अंग्रेजों की जैसी यातनाएँ भोगी, उसे

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

सच में कहा जाना भी मुश्किल ही है। कौन कहे प्रवासी भारतीयों को तो उफ करने का भी अधिकार नहीं था तथा ब्रिटिश–फ्रैंच–डच भला अपने अन्याय–शोषण की कथा को कैसे कहते। अतः यह त्रासद इतिहास तो प्रवासी भारतीयों की दारे पीढ़ियों के साथ ही चला गया।''1

इन परिस्थितियों में रहते हुए भी प्रवासी भारतीयों ने कैरेबियन देशों में अपनी संस्कृति का सहारा भी लिया और उसकी रक्षा भी की। इन दोनों पक्षों को उजागर करते हुए भारत के प्रसिद्ध प्रवासी साहित्य मर्मज्ञ डॉ० गोयनका का कहना है – ''सम्पूर्ण प्रवासी साहित्य में एक समानता देखने को मिलती है और वह है भारत प्रेम, भारत की धर्म–संस्कृति भाषा से प्रेम और भारत को एक सुखकर एवं समृद्धशाली एवं विश्व की एक शक्ति के रूप में देखने की कल्पना।''2

प्रवासी हिन्दी साहित्य

प्रवासी हिन्दी साहित्य के चिन्तन का प्रारम्भ भारतीयों के प्रवास के चिन्तन के लिए सर्वप्रथम ध्यान खींचता है। प्रवास का अर्थ है अपने स्थान को छोड़कर कहीं अन्यत्र जाना। डॉ. कृष्ण कुमार के अनुसार – ''प्रवास शब्द 'वस' धातु में प्रवास उपसर्ग लगने से बना है। 'वस' धातु का प्रयोग रहने के लिए होता है। वामन शिवराम आप्टे के अनुसार प्रवास शब्द का अर्थ विदेश गमन, विदेश यात्रा, घर पर न रहना है।''3 इससे कहीं ओर से अनेक दिशाएँ आलोकित होती हैं अर्थात अपने घर, नगर को छोड़कर किसी दूसरे नगर–प्रान्त में जाना भी प्रवास ही कहलाता है। परन्तु इस राष्ट्रीय प्रवास के साथ 19वीं शताब्दी में अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास की स्थिति भी उत्पन्न हुई। 19वीं शताब्दी से पहले भी भारतीय लोग विश्व के अनेक देशों में गए थे परन्तु 19वीं शताब्दी में गिरमिटिया लोगों का विदेशों में प्रवास और शेष अन्य लोगों के प्रवास में अन्तर था। 19वीं शताब्दी और इससे पूर्व विश्व के अनेक देशों में भारतीय लोग व्यापार तथा स्वाधीनता संग्राम को शक्ति देने और फैलाने के लिए विश्व के अनेक देशों में गए। परन्तु 'प्रवास' शब्द तब तक इस भंगिमा से परिपूर्ण नहीं था जिस भंगिमा से वह 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ब्रिटिश उपनिषदों में भारतीयों को मजदूर और गुलाम के रूप में भेजने पर हुआ। व्यापार, शिक्षा एवं स्वाधीनता आन्दोलन के लिए गए भारतीय वहाँ स्वेच्छा से गए थे, सहजता से रह रहे थे परन्तु गिरमिटिया मजदूरों के रूप में भारतीयों का प्रवास पूर्व के प्रवासियों से भिन्न था। इस प्रवास पर प्रकाश डालते हुए डॉ. कमल किशोर गोयनका का कहना है – ''परन्तु भारत में अंग्रेजों के शासन की स्थापना के बाद दृश्य में परिवर्तन हुआ। भारत में अंग्रेज, फ्रेंच, डच आदि शासक अपने–अपने उपनिवेशों में हजारों भारतीय मजदूरों को छल कपट से गिरमिटिया मजदूर बनाकर ले गए और इस प्रकार मॉरीशस, फिजी, सूरीनाम, गुयाना, ट्रिनीडाड आदि देशों में हजारों भारतीय पहुँचा दिए गए और इन भारतीयों ने तुलसीदास की 'रामचरितमानस' 'हनुमान चालीसा' जैसे धार्मिक और सांस्कृतिक ग्रंथों से

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176
अपने अस्तित्व और अस्मिता की रक्षा करते हुए इन देशों का अपने श्रम से कायाकल्प किया। ये भारतीय मजदूर जो 'इन्डियन इंडेन्चन लेवर सिस्टम' अर्थात शर्तबन्दी प्रथा के अन्तर्गत गए थे, जिनकी मातृभाषा भोजपुरी थी और अवधी में रची गई 'रामचरितमानस' खेत–मालिकों की क्रूरता, अत्याचार और शोषण के बीच उनकी जीवनी शक्ति थी।''4 इन लोगों ने जो साहित्य घर से बाहर रहकर लिखा, वह प्रवासी साहित्य कहलाया। ''अतः प्रवासी हिन्दी लेखन से हमारा तात्पर्य उस लेखन से होना चाहिए, जिसकी रचना घर से दूर हुई हो चाहे वह विदेश में हो या अपने ही देश में किन्तु घर से दूर।''5

भारतीय प्रवासियों ने अपने–अपने प्रवासी देशों में अपने संघर्ष एवं कर्मठता से अपना एक संसार बसाया। मनोहर पुरी ने इस संघर्ष को कुछ इन शब्दों में व्यक्त किया है – ''मॉरीशस, फीजी, गुयाना, त्रिनिडाड और टुबैगो में भारतीय मूल के लोगों ने जो संघर्ष किया और बाद में वहाँ पर अपनी प्रतिमाओं के झण्डे गाड़े, यह सब को ज्ञात है परन्तु छोटे–छोटे स्थानों पर अकेले ही दम पर अपनी आस्थाओं की ज्योति जलाए रखी।''6 प्रवासियों में यह आस्था अपनी भाषा एवं संस्कृति के प्रति थी – ''ये भारत की ही विशेषता है कि यहाँ से जो लोग बाहर गए, उन्होंने अपनी भारतीयता कायम ही नहीं रखी बल्कि उसका महत्त्व भी प्रतिष्ठित किया। देखते–देखते उन देशों के महत्त्वपूर्ण नागरिक भी बन गए। कई जगह तो मानो पूरा व्यवसाय ही उनके हाथों में आ गया। ... यह विशेषता उन्हें घर–कुटुम्ब अथवा संयुक्त परिवार की संस्था की एक विशिष्टता के कारण फलित हुई।''7 यहाँ जैनेन्द्र जी ने जिस संयुक्त परिवार की बात कही है वह भारत की सांस्कृतिक, सामाजिक विशेषता है। अतः प्रवासी भारतीय विषम परिस्थितियों में भी अपनी संस्कृति की शक्ति एवं आस्था के रूप में ही सफल हो सके। जिस भाषा को लेकर वे विदेशों में गए थे उस भाषा ने तथा उस भाषा में विद्यमान संस्कृति ने उन्हें अत्यधिक शक्ति प्रदान की। डॉ. लक्ष्मीमल सिंघवी जो कि अनेक वर्षों तक भारतीय विदेश सेवा में कार्यरत रहे उन्होंने भारतीयों की उन्नति और जिजीविषा का कारण उनकी हिन्दी एवं संस्कृति प्रेम को बताया। उनके अनुसार ''प्रवासी भारतीय अपनी जड़ों को खोजना एवं पाना चाहता है। वह अपनी जड़ों का खोजने के लिए आतुर रहता है। प्रवासी अपनी संस्कृति की पहचान भी लेकर चलता है, अपनी स्मृतियों का पाथेय और सम्बल लेकर दूसरे देश जाता है।''8 प्रवासी भारतीय भारत से, भारतीय संस्कृति से, जीवन मूल्यों से अत्यधिक गहराई से जुड़े हुए थे। इसके लिए वे भारतीय पर्वों का मानते हैं। भारतीय तीर्थों के नाम पर वहाँ नगर मौहल्लों के नाम रखते हैं। संस्कृति से जुड़ाव ही भाषा एवं साहित्य के प्रति उन्हें समर्पित बनाए रखता है। इस बात को डॉ. सिंघवी आगे कहते हैं – ''मैं भाषा को संस्कृति की मंजूषा मानता हूँ बल्कि वह संस्कृति की मंजूषा ही नहीं, उसका वाहन भी है।''9 प्रवासी भारतीय किसी भी देश में गए हों, उन्हें अपनी भाषा एवं संस्कृति से लगाव था। वस्तुतः संस्कृति व्यक्ति की पहचान और अस्मिता होती है। पहचान और अस्मिता की रक्षक

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

होती है। प्रसिद्ध हिन्दी साहित्यकार नरेन्द्र कोहली के अनुसार – ''उनके साथी अपने धार्मिक संस्कारों, सामाजिक परम्पराओं और उन सबका वहन करने वाली भाषा – संस्कृत तथा हिन्दी की रक्षा में भी जुटे हैं।.... भारत वंशियों को भारत से सम्बन्धित होने का मार्ग भी दिखाई देता है। उस परम्परा को बनाए रखने का आभास भी हुआ। लगाव उन लोगों में कहीं अभी भी भारत जीवित था। वे अपने धर्म, अपनी अपनी संस्कृति तथा अपनी भाषा के प्रेम से ओत–प्रोत थे और उन सबको अक्षुण्ण बनाए रखना चाहते थे।''10 प्रवासी भारतीयों में अपने धर्म, भाषा, संस्कृति के प्रति लगाव को प्रसिद्ध प्रवासी साहित्यकार अभिमन्यु अनत ने भी रेखांकित किया है – ''हिन्दी हमारी अस्मिता एवं संस्कृति की भाषा है, वही दासता से लड़ने का हथियार बनी और उसी से भारत के साथ आत्मीयता एवं अपनत्व स्थापित हो सका। दोनों देशों के बीच भाषा धर्म, संस्कृति का रिश्ता है ..... भारत में मानवीय जीवन मूल्यों को जीने वाले लोग हैं और मॉरीशस में भी भारतीय जीवन मूल्यों के लोग जीते हैं।''11

प्रवासी भारतीयों का भाषा, संस्कृति, धर्म, देश प्रेम ही उन्हें साहित्य से जोड़ता रहा तथा कालान्तर में साहित्य सृजन के लिए भी प्रेरित करता रहा है। प्रवासी साहित्य सृजन का प्रारम्भ बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में तब होता है जब भारत का उन देशों से सम्बन्ध जुड़ता है। भारतीय धर्म प्रचारक (सनातनी और आर्यसमाजी) का इन देशों में प्रवास जाना प्रारम्भ हुआ। वहाँ के लोगों में भारतीयता की भावना को पहचान और शक्ति प्रदान की। उन्हें प्रारम्भ में भक्ति गीत, संगीत के प्रति रुचि बनी। बाद में वे सृजनात्मक साहित्य की और उन्मुख हुए। इस विषय में मॉरिशस का स्थान अग्रणी रहा है – ''मॉरिशस की हिन्दी कविता का इतिहास 'होली' कविता (हिन्दुस्तानी, 2 मार्च 1913) से प्रारम्भ होता है जिसे गणेशी उपनामधारी किसी कवि ने लिखी थी। इस कविता पर आर्य समाज का प्रभाव है और ऐसा प्रतीत होता है कि इस भारत से जाने वाले किसी विद्वान ने लिखा होगा।''12 इसके बाद तो अन्य कैरेबियन देशों में भी साहित्य सृजन का मार्ग खुल गया और साहित्य की सभी विधाओं में साहित्य सृजन प्रारम्भ हो गया।

मारीशस के साहित्यकारों की संख्या तो सैंकड़ों में है तथा वहाँ केवल साहित्य सृजन ही नहीं अपितु पत्र–पत्रिकाएँ भी प्रकाशित हो रही हैं। मारीशस के साहित्यकारों में मुनीश्वरलाल, चिन्तामणि, अभिमन्यु अनत, ब्रजेन्द्र कुमार भगत 'मधुकर', इन्द्रदेव भोला, डॉ. वीरसेन जागा सिंह, हरिनायक सीता, पूजानन्द नेमा। मारीशस से 'अनुराग' (1969–77), दर्पण (1975), आभा (1927–76), हमारा देश (1971–74), निर्वाण (1975), विश्व दर्पण, 'बसन्त' (1978 से आज तक), स्वदेश (1986–90), जनवाणी, इन्द्रधनुष (1988 से अभी तक) आदि प्रकाशित हुई एवं हो रही है। मधुकर का काव्य मारीशस में रचित प्रवासी हिन्दी साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। फीजी में भी प्रवासी हिन्दी साहित्य का पर्याप्त लेखन हो रहा है। वहाँ के साहित्यकारों में पण्डित कमला प्रसाद मिश्र, जोगिन्द्र सिंह कंवल, डॉ. सुब्रमणि, डॉ. विवेकानन्द

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176
शर्मा, अमरजीत कौर, काशी राम कुमुद, महावीर मिश्र, पं. हरीश शर्मा आदि अनेक हैं। यही स्थिति सूरीनाम, ट्रिनिडाड में भी मिलती है।

ऐसा नहीं कि केवल करेवियन देशों में गए भारतीय मजदूरों ने ही हिन्दी साहित्य सृजन किया अपितु स्वतंत्रता के बाद अमेरीका, यूरोपीय देशों में भी हिन्दी साहित्य सृजन का कार्य प्रचुर मात्रा में हो रहा है। विश्व के अनेक देशों में 'विश्व हिन्दी सम्मेलनों' ने प्रवासी हिन्दी साहित्य लेखन में अद्भुत गति प्रदान की है। अब तक मारीशस, सूरीनाम, ट्रिनीडाड, अमेरिका, ब्रिटेन और भारत आदि अनेक देशों में प्रवासी हिन्दी साहित्य लेखन हो रहा है। अमेरिका में कुँवर चन्द्र प्रकाश सिंह, रामेश्वर अशान्त, भूदेव शर्मा, गुलाब खण्डेलवाल, वेद प्रकाश 'बटुक', विजय मेहता, राम चौधरी, डॉ. अंजना संधीर, सुधा ओम ढींगरा ने निजी तथा साहित्य संस्थाओं से हिन्दी पत्रिकाओं एवं कृतियों के निरन्तर प्रकाशन से अमेरिका के प्रवासी हिन्दी साहित्य की संकल्पना को साकार रूप दिया है। इसी प्रकार जर्मनी में डॉ. इन्दु प्रकाश पाण्डेय, हालैण्ड में डॉ. मोहन कान्त गौतम, नावे में डॉ. सुरेश चन्द्र शुक्ल आदि ने भी अपने प्रवासी देशों में प्रवासी साहित्य की मशाल जलाई है।

इसी प्रकार यूरोपीय महाद्वीप के इंग्लैण्ड में भी प्रवासी भारतीयों ने कविता, कहानी, नाटक, पत्रकारिता आदि विधाओं में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। इंग्लैण्ड में छठे विश्व हिन्दी सम्मेलन के वहाँ हिन्दी सृजनात्मक क्षमता में अद्भुत विस्तार किया है। यहाँ पर रमा भार्गव, रमेश पटेल, सत्येन्द्र श्रीवास्तव, ऊषा राजे सक्सेना, दिव्य माथुर, गौतम सचदेव, प्रवण शर्मा, भारतेन्दु विमल, जयन्ती प्रसाद अग्रवाल, कृष्णा अनुराधा, कीर्ति चौधरी, पद्मेश गुप्त, निखिल कौशिक, उषा वर्मा, शैल अग्रवाल, श्यामा कुमार, प्रियम्वदा देवी मिश्र, सरोज श्रीवास्तव, कृष्ण कुमार आदि ऐसे साहित्यकार हैं जिनके स्वतंत्र एवं संयुक्त काव्य संग्रह, कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। ब्रिटेन में अनेक हिन्दी पत्र–पत्रिकाएँ भी प्रकाशित हो रही 'पुरवाई' का नाम सम्मान के साथ लिया जाता है। यहाँ अनेक हिन्दी सेवी संस्थाएँ भी कार्यरत हैं।

सन्दर्भ

1. अभिमन्यु अनत –'प्रवासियों का गूँगा इतिहास' (गगनांचल), 1980, पृ. 98
2. अभिमन्यु अनत, भारत मेरी प्रेरणा का स्रोत रहा है, गगनांचल, 1985, अंक–4, पृ. 28–30
3. कमल किशोर गोयनका, हिन्दी का प्रवासी साहित्य, पृ. 13
4. कमल किशोर गोयनका, हिन्दी का प्रवासी साहित्य, पृ. 14
5. कमल किशोर, हिन्दी का प्रवासी साहित्य, पृ. 18.
6. कृष्ण कुमार, प्रवासी हिन्दी लेखन की पृष्ठभूमि और उसका स्वरूप, वर्तमान साहित्य, 2006, पृ. 69
7. जैनेन्द्र कुमार जैन, गांधी के मानवीय रूप को उभार सकता है मॉरीशस, गगनांचल, 1985, अंक–4, पृ. 20

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

8. नरेन्द्र काइली, विदेशों में बसा भारत, गगनांचल, 2002, अंक–4, पृ. 30–33
9. मनोहर पुरी, अलग ही संसार है प्रवासी भारतीयों का, गगनांचल, 2002, अंक–4, पृ. 75
10. लक्ष्मी मल सिंघवी, प्रवासी अपनी संस्कृति की पहचान लेकर चलता है, गगनांचल, 2002, अंक–4, पृ. 22.
11. वही, पृ० 25
12. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत हिन्दी कोश, पृ. 513